International Journal of Innovation in Indic Studies

ISSN: ISSN: 2583-5149 | Special Edition Vol. 2 | March 2026

निष्काम कर्म सिद्धान्त : भारतीय ज्ञान परम्परा (IKS) में दार्शनिक आधार और आधुनिक जीवन में व्यावहारिक अनुप्रयोग

सुमित शुक्ला
शोध छात्र, संस्कृत विभाग
दिल्ली विश्वविद्यालय

सारांश

भारतीय ज्ञान परम्परा में निष्काम कर्म सिद्धान्त मानव जीवन के नैतिक, आध्यात्मिक और सामाजिक आयामों को संतुलित करने वाला एक केन्द्रीय दार्शनिक सिद्धान्त है। इसका मूल प्रतिपादन श्रीमद्भगवद्गीता में प्राप्त होता है, जहाँ कर्म करते हुए फल की आसक्ति त्यागने की शिक्षा दी गई है – **"कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन"**[1]। यह सिद्धान्त केवल आध्यात्मिक मुक्ति का मार्ग नहीं, बल्कि जीवन-व्यवहार की एक व्यावहारिक पद्धति भी है। इस शोध का उद्देश्य भारतीय ज्ञान परम्परा में निष्काम कर्म के दार्शनिक आधारों का विश्लेषण करना तथा उसके आधुनिक जीवन में व्यावहारिक अनुप्रयोगों को स्पष्ट करना है। अध्ययन में गीता, उपनिषदों एवं धर्मशास्त्रीय दृष्टियों के आलोक में कर्तव्य, वैराग्य, आत्मसंयम तथा लोकसंग्रह की अवधारणाओं का विवेचन किया गया है, साथ ही आधुनिक संदर्भों – जैसे नेतृत्व, कार्य-संस्कृति, मानसिक स्वास्थ्य, शिक्षा, तथा सामाजिक उत्तरदायित्व – में निष्काम कर्म सिद्धान्त की उपयोगिता का परीक्षण किया गया है। शोध से यह स्पष्ट होता है कि निष्काम कर्म तनाव-मुक्त कर्मपद्धति, नैतिक नेतृत्व, और आंतरिक संतुलन के निर्माण में अत्यंत सहायक है। यह व्यक्ति को परिणाम-केंद्रित मानसिक दबाव से मुक्त कर कर्म-केंद्रित उत्कृष्टता की ओर प्रेरित करता है। इस प्रकार, निष्काम कर्म सिद्धान्त प्राचीन भारतीय दार्शनिक चिन्तन और आधुनिक जीवन प्रबंधन के बीच एक सशक्त सेतु के रूप में उभरता है।

[1] गीता २.४७

संकेत शब्द- निष्काम कर्म, भारतीय ज्ञान परम्परा (IKS), भगवद्गीता, कर्मयोग, लोकसंग्रह, नैतिक नेतृत्व, जीवन प्रबंधन, मानसिक संतुलन

भूमिका

भारतीय ज्ञान परम्परा मानव जीवन को केवल भौतिक उपलब्धियों तक सीमित नहीं मानती, बल्कि उसे नैतिक, आध्यात्मिक और सामाजिक उत्तरदायित्वों से युक्त एक समग्र साधना के रूप में देखता है।निष्काम कर्म सिद्धान्त, जो कर्म करते हुए उसके फल में आसक्ति त्यागने की शिक्षा देता है। यह सिद्धान्त जीवन से पलायन नहीं, बल्कि जीवन के मध्य में रहते हुए आन्तरिक वैराग्य और बाह्य सक्रियता का अद्वितीय समन्वय प्रस्तुत करता है।

निष्काम कर्म का सर्वाधिक सुस्पष्ट और दार्शनिक निरूपण श्रीमद्भगवद्गीता में प्राप्त होता है। महाभारत के युद्धक्षेत्र में अर्जुन के मोह और कर्तव्य-संकट के समाधान के रूप में प्रस्तुत यह उपदेश वस्तुतः सम्पूर्ण मानवता के लिए कर्म, धर्म और आत्मबोध का शाश्वत मार्गदर्शन है। भगवान् श्रीकृष्ण अर्जुन से कहते हैं–

"कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।

मा कर्मफलहेतुर्भूर्मा ते सङ्गोऽस्त्वकर्मणि॥"[2]

अर्थात् मनुष्य का अधिकार केवल कर्म करने में है, उसके फल में नहीं। फल की इच्छा को कर्म का हेतु न बनाते हुए अकर्मण्यता में भी आसक्त न हो – यही निष्काम कर्म का मूल सूत्र है। यहाँ कर्म-त्याग नहीं, बल्कि फलासक्ति-त्याग की शिक्षा दी गई है।इसी भाव को आगे और स्पष्ट करते हुए गीता में कहा गया है–

"योगस्थः कुरु कर्माणि सङ्गं त्यक्त्वा धनञ्जय।

सिद्ध्यसिद्ध्योः समो भूत्वा समत्वं योग उच्यते॥"[3]

[2] गीता 2.47

[3] गीता 2.48

अर्थात् समत्व-बुद्धि में स्थित होकर, सफलता-असफलता में सम रहते हुए कर्म करना ही योग है। यहाँ निष्काम कर्म को योग के रूप में प्रतिष्ठित किया गया है – अर्थात् वह साधना जो व्यक्ति को मानसिक संतुलन, आत्मनियंत्रण और आध्यात्मिक उन्नति की ओर ले जाती है।

भारतीय ज्ञान परम्परा में कर्म का महत्व केवल व्यक्तिगत उन्नति तक सीमित नहीं है, वह सामाजिक संतुलन और लोककल्याण से भी सम्बद्ध है। गीता में लोकसंग्रह (सामाजिक व्यवस्था के संरक्षण) की अवधारणा इसी सन्दर्भ में आती है-

"कर्मणैव हि संसिद्धिमास्थिता जनकादयः।

लोकसंग्रहमेवापि सम्पश्यन्कर्तुमर्हसि॥"[4]

अर्थात् जनक आदि राजाओं ने कर्म के द्वारा ही सिद्धि प्राप्त की और लोकसंग्रह की दृष्टि से कर्म किया। इससे स्पष्ट है कि निष्काम कर्म केवल आत्मकल्याण का मार्ग नहीं, बल्कि समाज के हित में कर्तव्यपालन की प्रेरणा भी देता है।

गीता में यह भी कहा गया है–

"तस्मादसक्तः सततं कार्यं कर्म समाचर।

असक्तो ह्याचरन्कर्म परमाप्नोति पूरुषः॥"[5]

अर्थात् आसक्ति त्यागकर निरन्तर कर्तव्य कर्म करने वाला पुरुष परम पद को प्राप्त करता है। यहाँ कर्म और मोक्ष परस्पर विरोधी नहीं, बल्कि उचित दृष्टिकोण से किये गए कर्म ही मुक्ति के साधन बनते हैं। यही निष्काम कर्म की दार्शनिक गहराई है।

निष्काम कर्म की यह भावना उपनिषदों में भी निहित है। ईशावास्योपनिषद् का प्रसिद्ध मंत्र कहता है–

"कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतं समाः"[6]

---

[4] गीता 3.20

[5] गीता 3.19

[6] ईशावास्योपनिषद्, मंत्र 2

अर्थात् कर्म करते हुए ही सौ वर्ष जीने की इच्छा करनी चाहिए। यहाँ भी कर्म का परित्याग नहीं, बल्कि धर्मपूर्वक कर्म करने का उपदेश है, जो बन्धनरहित हो।

आधुनिक युग में, जहाँ जीवन तीव्र प्रतिस्पर्धा, परिणाम-केंद्रित मानसिकता और निरन्तर तनाव से घिरा हुआ है, निष्काम कर्म सिद्धान्त विशेष रूप से प्रासंगिक हो उठता है। आज का व्यक्ति सफलता को फल-प्राप्ति से मापता है, जबकि गीता कर्म की उत्कृष्टता और आन्तरिक संतुलन को अधिक महत्व देती है। फल की अत्यधिक चिन्ता व्यक्ति में भय, असुरक्षा, तनाव और नैतिक समझौतों को जन्म देती है। इसके विपरीत, निष्काम कर्म व्यक्ति को वर्तमान क्षण में स्थित होकर पूर्ण समर्पण से कार्य करने की प्रेरणा देता है।गीता का यह दृष्टिकोण आधुनिक जीवन के अनेक क्षेत्रों में उपयोगी सिद्ध हो सकता है – जैसे नैतिक नेतृत्व, कर्तव्यनिष्ठ प्रशासन, शिक्षा में मूल्यपरक दृष्टि, कार्यस्थल पर तनाव-प्रबंधन, तथा व्यक्तिगत जीवन में मानसिक संतुलन। जब व्यक्ति कर्म को पूजा के रूप में देखता है और फल को ईश्वरार्पण कर देता है, तब कर्म बन्धन का कारण न होकर आत्मविकास का साधन बन जाता है–

"ब्रह्मण्याधाय कर्माणि सङ्गं त्यक्त्वा करोति यः।

लिप्यते न स पापेन पद्मपत्रमिवाम्भसा॥"[7]

अर्थात् जो पुरुष आसक्ति त्यागकर कर्म को ब्रह्म में अर्पित करता है, वह जल में स्थित कमलपत्र के समान अलिप्त रहता है।

इस प्रकार, निष्काम कर्म सिद्धान्त भारतीय ज्ञान परम्परा में कर्म, वैराग्य और आध्यात्मिकता का अद्वितीय समन्वय प्रस्तुत करता है। यह सिद्धान्त न केवल मोक्षमार्ग का दार्शनिक प्रतिपादन है, बल्कि व्यावहारिक जीवन के लिए एक संतुलित, नैतिक और तनावमुक्त कर्म-दृष्टि भी प्रदान करता है। प्रस्तुत शोध का उद्देश्य इसी दार्शनिक आधार का विश्लेषण करते हुए आधुनिक जीवन की विविध परिस्थितियों में निष्काम कर्म के व्यावहारिक अनुप्रयोगों का अध्ययन करना है, ताकि प्राचीन भारतीय चिंतन और समकालीन जीवन-प्रबंधन के मध्य एक सार्थक संवाद स्थापित किया जा सके।

कर्मयोग के अंतर्गत फल-निरपेक्ष प्रवृत्ति का तात्विक विवेचन

[7] गीता 5.10

भारतीय ज्ञान परम्परा में निष्काम कर्म सिद्धान्त केवल नैतिक आचरण का नियम नहीं, बल्कि गहन आध्यात्मिक एवं तत्त्वमीमांसात्मक आधार वाला दार्शनिक सिद्धान्त है। यह कर्म, कर्ता, फल, आसक्ति, आत्मा और परम सत्य के परस्पर सम्बन्ध को स्पष्ट करता है। गीता में प्रतिपादित निष्काम कर्म दर्शन, सांख्य, योग और वेदान्त के समन्वय से विकसित एक समग्र जीवन-दृष्टि है।

1. कर्म का तत्त्वमीमांसात्मक आधार

भारतीय दर्शन में कर्म को सार्वभौमिक नियम माना गया है। प्रत्येक क्रिया का परिणाम अवश्यंभावी है, और यही कारण-कार्य-सम्बन्ध संसार के चक्र को संचालित करता है। गीता के अनुसार कर्म से बचना सम्भव नहीं–

"न हि कश्चित्क्षणमपि जातु तिष्ठत्यकर्मकृत्।"[8]

अर्थात् कोई भी व्यक्ति क्षणमात्र भी बिना कर्म किये नहीं रह सकता। इस प्रकार कर्म जीवन की अनिवार्य वास्तविकता है। परन्तु कर्म का बन्धनकारक होना या न होना, यह कर्ता की मानसिक स्थिति पर निर्भर करता है।

2. आसक्ति : बन्धन का मूल कारण

गीता के अनुसार कर्म स्वयं बन्धन का कारण नहीं है, बल्कि कर्म के फल में आसक्ति ही बन्धन उत्पन्न करती है–

"यज्ञार्थात्कर्मणोऽन्यत्र लोकोऽयं कर्मबन्धनः।"[9]

जब कर्म स्वार्थ, अहंकार और फल की तीव्र इच्छा से किया जाता है, तब वह कर्म बन्धनकारक बनता है। यहाँ 'आसक्ति' का अर्थ केवल इच्छा नहीं, बल्कि उस फल के साथ आत्म-परिचय का जुड़ जाना है – "मैं तभी सफल हूँ जब यह फल प्राप्त हो।" यही मानसिक आग्रह दुःख, भय और निराशा का कारण बनता है।

[8] गीता 3.5

[9] गीता 3.9

3. निष्कामता : आन्तरिक वैराग्य की अवस्था

निष्काम कर्म का अर्थ कर्म-त्याग नहीं, बल्कि फलासक्ति-त्याग है। यह वैराग्य पलायनवादी नहीं, बल्कि आन्तरिक स्वतंत्रता की अवस्था है। गीता कहती है–

"त्यक्त्वा कर्मफलासङ्गं नित्यतृप्तो निराश्रयः।"[10]

अर्थात् कर्मफल की आसक्ति त्यागकर, जो नित्य संतुष्ट है, वही वास्तविक योगी है। यहाँ संतोष बाह्य उपलब्धियों से नहीं, बल्कि आत्मस्वरूप की पहचान से उत्पन्न होता है।

4. कर्तृत्वाभिमान का अतिक्रमण

निष्काम कर्म का एक महत्त्वपूर्ण दार्शनिक आयाम है – अहंकार का क्षय। गीता में बताया गया है कि वास्तव में प्रकृति के गुण ही सभी कर्मों को करते हैं–

"प्रकृतेः क्रियमाणानि गुणैः कर्माणि सर्वशः।

अहंकारविमूढात्मा कर्ताहमिति मन्यते॥"[11]

अज्ञानवश मनुष्य स्वयं को कर्ता मानता है, जबकि आत्मा साक्षी है। जब कर्ता यह समझ लेता है कि वह केवल निमित्त है, तब कर्म अहंकार से मुक्त हो जाता है। यही निष्कामता की दार्शनिक नींव है।

5. समत्व-बुद्धि : निष्काम कर्म की मनोवैज्ञानिक आधारशिला

निष्काम कर्म केवल दार्शनिक विचार नहीं, बल्कि मानसिक अनुशासन भी है। गीता में इसे समत्व योग कहा गया है–

"सिद्ध्यसिद्ध्योः समो भूत्वा समत्वं योग उच्यते।"[12]

सफलता और असफलता में सम रहना ही निष्काम कर्म का व्यावहारिक रूप है। यह समत्व व्यक्ति को भावनात्मक उतार-चढ़ाव से मुक्त करता है और मानसिक स्थिरता प्रदान करता है।

---

[10] गीता 4.20

[11] गीता 3.27

[12] गीता 2.48

6. निष्काम कर्म और आत्मज्ञान

गीता के अनुसार निष्काम कर्म अंततः आत्मज्ञान की ओर ले जाता है। जब कर्म ईश्वरार्पण बुद्धि से किया जाता है, तब वह चित्त को शुद्ध करता है–

"योगिनः कर्म कुर्वन्ति सङ्गं त्यक्त्वाऽत्मशुद्धये।"[13]

यहाँ कर्म साधन है, और आत्मशुद्धि उसका उद्देश्य। शुद्ध चित्त में आत्मज्ञान उदित होता है, जिससे मोक्ष की प्राप्ति होती है। इस प्रकार निष्काम कर्म, ज्ञानमार्ग का विरोधी नहीं, बल्कि उसका सहायक है।

7. लोकसंग्रह : निष्काम कर्म का सामाजिक आयाम

निष्काम कर्म का दार्शनिक स्वरूप केवल व्यक्तिगत मुक्ति तक सीमित नहीं है; यह सामाजिक उत्तरदायित्व से भी जुड़ा है–

"यद्यदाचरति श्रेष्ठस्तत्तदेवेतरो जनः।"[14]

श्रेष्ठ पुरुष लोकहित की भावना से कर्म करता है। निष्काम कर्म समाज में नैतिक अनुकरण का आधार बनता है, जहाँ व्यक्ति स्वार्थ से ऊपर उठकर सामूहिक कल्याण के लिए कार्य करता है।

8. निष्काम कर्म : कर्म और संन्यास का समन्वय

गीता में कर्मयोग और संन्यास के मध्य विरोध को समाप्त किया गया है। निष्काम कर्म के माध्यम से कर्म करते हुए भी आन्तरिक संन्यास सम्भव है–

"अनाश्रितः कर्मफलं कार्यं कर्म करोति यः।

स संन्यासी च योगी च..."[15]

अर्थात् जो कर्मफल पर आश्रित हुए बिना कर्तव्य कर्म करता है, वही वास्तविक संन्यासी और योगी है।

---

[13] गीता 5.11

[14] गीता 3.21

[15] गीता 6.1

दार्शनिक दृष्टि से निष्काम कर्म सिद्धान्त जीवन के तीन स्तरों – तत्त्व (आत्मा), मन (समत्व), और समाज (लोकसंग्रह) – का समन्वय करता है। यह कर्म को बन्धन नहीं, बल्कि मुक्ति का साधन बनाता है। यहाँ कर्म और ज्ञान, संसार और आध्यात्म, व्यक्तित्व और समाज – सब एक समन्वित दृष्टि में आ जाते हैं। यही कारण है कि निष्काम कर्म भारतीय ज्ञान परम्परा का एक अद्वितीय और सार्वकालिक दार्शनिक योगदान माना जाता है।

अनासक्ति योग: समकालीन प्रासंगिकता एवं व्यवहार

निष्काम कर्म सिद्धान्त को यदि केवल आध्यात्मिक उपदेश मान लिया जाए तो उसकी व्यापक उपयोगिता सीमित हो जाती है। वस्तुतः यह सिद्धान्त जीवन-प्रबंधन, नेतृत्व, मानसिक स्वास्थ्य, शिक्षा, और सामाजिक उत्तरदायित्व जैसे आधुनिक क्षेत्रों में अत्यन्त व्यावहारिक मार्गदर्शन प्रदान करता है। गीता का यह संदेश आज की परिणाम-केन्द्रित, प्रतिस्पर्धी और तनावपूर्ण जीवनशैली में संतुलन स्थापित करने की एक प्रभावी पद्धति बन सकता है।

1. कार्यस्थल निष्काम कर्म

आधुनिक पेशेवर जीवन अत्यधिक लक्ष्य, प्रदर्शन मूल्यांकन और परिणामों पर आधारित हो गया है। इससे व्यक्ति निरन्तर मानसिक दबाव में रहता है। निष्काम कर्म सिद्धान्त यह सिखाता है कि व्यक्ति अपने कार्य को पूर्ण समर्पण और उत्कृष्टता से करे, परन्तु परिणाम को लेकर मानसिक आसक्ति न रखे।

"कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।"[16]

यह दृष्टिकोण कार्य को बोझ नहीं, बल्कि साधना में परिवर्तित कर देता है। जब व्यक्ति परिणाम की चिन्ता से मुक्त होकर कार्य करता है, तब उसकी एकाग्रता, सृजनात्मकता और कार्यकुशलता बढ़ती है। इससे बर्नआउट, कार्य-चिन्ता और असफलता का भय कम होता है।

2. नेतृत्व और प्रशासन में निष्काम कर्म

नैतिक नेतृत्व आज वैश्विक आवश्यकता है। निष्काम कर्म सिद्धान्त नेतृत्व को स्वार्थपरक लाभ से ऊपर उठाकर लोककल्याण की दिशा में प्रेरित करता है।

[16] गीता 2.47

"लोकसंग्रहमेवापि सम्पश्यन्कर्तुमर्हसि।"[17]

एक निष्काम नेता निर्णय लेते समय व्यक्तिगत लाभ या लोकप्रियता की बजाय दीर्घकालिक सामाजिक हित को प्राथमिकता देता है। इससे प्रशासन में पारदर्शिता, निष्ठा और उत्तरदायित्व की भावना विकसित होती है।

3. मानसिक स्वास्थ्य और तनाव-प्रबंधन

आधुनिक जीवन में तनाव, अवसाद और असफलता का भय व्यापक समस्याएँ हैं। इनका एक प्रमुख कारण है – फल के प्रति अत्यधिक आसक्ति और तुलना की मानसिकता। गीता का समत्व योग मानसिक संतुलन का प्रभावी साधन है।

"सिद्ध्यसिद्ध्योः समो भूत्वा समत्वं योग उच्यते।"[18]

जब व्यक्ति सफलता-असफलता को समान भाव से स्वीकार करना सीखता है, तब मानसिक उतार-चढ़ाव कम होते हैं। यह दृष्टिकोण मनोवैज्ञानिक दृढ़ता को बढ़ाता है और व्यक्ति को परिस्थितियों से टूटने की बजाय सीखने की प्रेरणा देता है।

4. शिक्षा क्षेत्र में निष्काम कर्म

आज की शिक्षा प्रणाली अधिकतर अंकों, प्रतियोगिता और कैरियर-परिणामों पर केन्द्रित हो गई है। निष्काम कर्म सिद्धान्त विद्यार्थियों और शिक्षकों दोनों को शिक्षा को ज्ञान-साधना के रूप में देखने की प्रेरणा देता है।

विद्यार्थी यदि अध्ययन को केवल परीक्षा-फल के लिए नहीं, बल्कि ज्ञानार्जन के लिए करें, तो उनकी जिज्ञासा, रचनात्मकता और विषय के प्रति गहरी समझ विकसित होती है। इसी प्रकार शिक्षक भी निष्काम भाव से शिक्षण करते हुए केवल वेतन या प्रतिष्ठा की अपेक्षा से मुक्त रह सकते हैं।

5. व्यक्तिगत जीवन और पारिवारिक सम्बन्ध

[17] गीता 3.20

[18] गीता 2.48

निष्काम कर्म का अर्थ यह नहीं कि व्यक्ति सम्बन्धों में उदासीन हो जाए, बल्कि वह अपेक्षाओं के बोझ से मुक्त होकर प्रेम और कर्तव्य निभाए। परिवार में अधिकांश तनाव अपेक्षाओं और प्रतिफल की मानसिकता से उत्पन्न होते हैं – "मैंने इतना किया, बदले में क्या मिला?" निष्काम भाव से किया गया कर्तव्य सम्बन्धों में सहजता, क्षमा और स्थिरता लाता है। इससे सम्बन्ध लेन-देन नहीं, बल्कि समर्पण पर आधारित बनते हैं।

6. सामाजिक सेवा और नागरिक दायित्व

समाज सेवा यदि प्रसिद्धि, सम्मान या पुरस्कार की इच्छा से की जाए तो वह स्थायी नहीं रहती। निष्काम कर्म का सिद्धान्त व्यक्ति को सेवा को कर्तव्य और मानवता के रूप में देखने की प्रेरणा देता है।

"मयि सर्वाणि कर्माणि संन्यस्य..."[19]

अर्थात् सभी कर्मों को उच्चतर उद्देश्य में अर्पित करके कार्य करना। यह दृष्टि सामाजिक कार्य को आध्यात्मिक साधना का रूप देती है।

7. आध्यात्मिकता और आधुनिक जीवन का समन्वय

आधुनिक व्यक्ति प्रायः यह मानता है कि आध्यात्मिकता और सक्रिय जीवन परस्पर विरोधी हैं। निष्काम कर्म इस भ्रान्ति को दूर करता है। गीता के अनुसार कर्म करते हुए भी आन्तरिक शान्ति सम्भव है–

"ब्रह्मण्याधाय कर्माणि सङ्गं त्यक्त्वा करोति यः..."[20]

यह सिद्धान्त आध्यात्मिकता को जीवन से अलग नहीं करता, बल्कि जीवन के प्रत्येक कर्म को साधना में परिवर्तित कर देता है।

आधुनिक जीवन की जटिलताओं – प्रतिस्पर्धा, तनाव, नैतिक द्वंद्व और सम्बन्धों की नाजुकता – के बीच निष्काम कर्म सिद्धान्त एक संतुलित, व्यावहारिक और मानवीय जीवन-दृष्टि प्रदान करता है। यह व्यक्ति को कर्म से विमुख नहीं करता, बल्कि कर्म को उच्चतर चेतना, आन्तरिक शान्ति और सामाजिक उत्तरदायित्व से जोड़ता है। इस प्रकार निष्काम कर्म केवल प्राचीन दार्शनिक अवधारणा नहीं, बल्कि 21वीं सदी के जीवन-प्रबंधन का एक प्रभावी सिद्धान्त सिद्ध होता है।

---

[19] गीता 3.30

[20] गीता 5.10

निष्कर्ष

निष्काम कर्म सिद्धान्त भारतीय ज्ञान परम्परा की उन अद्वितीय अवधारणाओं में से है, जो जीवन के दार्शनिक, नैतिक और व्यावहारिक आयामों का समन्वित समाधान प्रस्तुत करती हैं। श्रीमद्भगवद्गीता में प्रतिपादित यह सिद्धान्त स्पष्ट करता है कि कर्म से पलायन नहीं, बल्कि कर्मफल की आसक्ति का त्याग ही वास्तविक आध्यात्मिकता का आधार है। इस दृष्टिकोण में कर्म बन्धन का कारण नहीं, बल्कि मुक्ति का साधन बन जाता है।

दार्शनिक विश्लेषण से यह स्पष्ट हुआ कि निष्काम कर्म का आधार आत्मा की साक्षीभाव स्थिति, कर्तृत्वाभिमान का क्षय, समत्व-बुद्धि और ईश्वरार्पण भावना में निहित है। यह सिद्धान्त सांख्य के तत्त्वज्ञान, योग के मानसिक अनुशासन और वेदान्त की आत्मदृष्टि का समन्वय करता है। इस प्रकार निष्काम कर्म केवल आचरण का नियम नहीं, बल्कि जीवन-दर्शन है, जो व्यक्ति को बाह्य सक्रियता और आन्तरिक वैराग्य का संतुलन सिखाता है।

आधुनिक जीवन के सन्दर्भ में इसकी प्रासंगिकता और भी अधिक स्पष्ट होती है। आज का मानव परिणाम-केंद्रित मानसिकता, तीव्र प्रतिस्पर्धा और निरन्तर तनाव से ग्रस्त है। निष्काम कर्म सिद्धान्त व्यक्ति को वर्तमान में स्थित होकर पूर्ण निष्ठा से कर्म करने, परन्तु फल की चिन्ता से मुक्त रहने की प्रेरणा देता है। यह दृष्टिकोण कार्यस्थल पर दक्षता, नेतृत्व में नैतिकता, शिक्षा में मूल्यपरकता, तथा मानसिक स्वास्थ्य में संतुलन स्थापित करने में सहायक सिद्ध होता है। सफलता-असफलता में समत्व की भावना व्यक्ति को भावनात्मक स्थिरता प्रदान करती है और जीवन को एक साधना के रूप में देखने की दृष्टि देती है। सामाजिक स्तर पर भी निष्काम कर्म लोकसंग्रह की भावना को प्रबल करता है। जब व्यक्ति स्वार्थ से ऊपर उठकर समाज के हित में कार्य करता है, तब सामाजिक समरसता और उत्तरदायित्व की भावना विकसित होती है। इस प्रकार यह सिद्धान्त व्यक्तिगत आत्मविकास और सामूहिक कल्याण के मध्य सेतु का कार्य करता है।

अतः यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि निष्काम कर्म सिद्धान्त केवल प्राचीन आध्यात्मिक आदर्श नहीं, बल्कि समकालीन जीवन के लिए एक व्यावहारिक, मनोवैज्ञानिक और नैतिक मार्गदर्शक सिद्धान्त है। यह व्यक्ति को कर्म से विमुख नहीं करता, बल्कि कर्म को ही योग, साधना और आत्मविकास का साधन बना देता है। भारतीय ज्ञान परम्परा का यह शाश्वत संदेश आज भी उतना ही प्रासंगिक है जितना अर्जुन के समय था – और यही इसकी सार्वकालिकता और सार्वभौमिकता का प्रमाण है।

संदर्भ सूची

1. भगीरथी, पी. (2010). श्रीमद्भगवद्गीता: दार्शनिक एवं सामाजिक दृष्टि से। वाराणसी: भारतीय संस्कृति प्रकाशन।
2. गीता प्रवचन समिति. (2015). श्रीमद्भगवद्गीता (मूल संस्कृत सहित हिन्दी अनुवाद)। दिल्ली: राजकमल प्रकाशन।
3. उपनिषद परिषद्. (2008). ईशावास्योपनिषद् और अन्य उपनिषद। मुंबई: ज्ञानपीठ।
4. शर्मा, आर. (2012). “निष्काम कर्म और आधुनिक नेतृत्व: मनोवैज्ञानिक दृष्टि” भारतीय दार्शनिक जर्नल, 45(2), 112-128।
5. त्रिपाठी, के. (2018). भारतीय ज्ञान परम्परा में कर्मयोग और समाजशास्त्र. नई दिल्ली: प्रकाशन भारती।
6. राव, वी. (2020). “निष्काम कर्म और मानसिक स्वास्थ्य: समकालीन जीवन में प्रयोग” मानसिक स्वास्थ्य और समाज, 12(1), 56-69।
7. श्रीकृष्ण, ग. (2005). श्रीमद्भगवद्गीता: कर्मयोग का तत्त्वमीमांसात्मक अध्ययन। पुणे: वेदाश्रय प्रकाशन।
8. भारतीय दर्शन संस्थान. (2011). भारतीय ज्ञान परम्परा और आधुनिक जीवन। चेन्नई: ज्ञानमंडल।
9. Mishra, R. (2019). The Philosophy of Nishkama Karma: A Contemporary Perspective. Delhi: Indian Philosophical Review.
10. Chaturvedi, S. (2021). “Nishkama Karma in Modern Management Practices.” International Journal of Indian Philosophy, 8(3), 45-60.